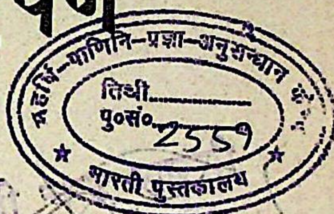


छात्र-पथ-दर्पण



लेखक—

सूर्य प्रसाद मिश्र,

कोविद, साहित्याचार्य

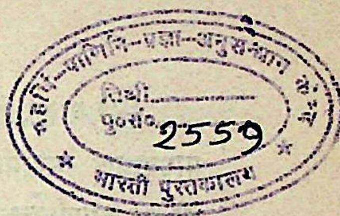
परिष्कर्ता—

राधेश्याम मिश्र,

व्याकरणाचार्य

(लब्ध स्वर्णपदक)

मूल्य :—[पचहत्तर पैसे]



आशीर्वचन

(१) वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रस्तोता का आशीर्वचनः—

श्री सूर्य प्रसाद मिश्र साहित्याचार्य भविष्णु और वर्धिष्णु नवयुवक हैं। उनके छात्र-जीवन से ही मैं उनसे सन्निकट-रूप से परिचित रहा हूँ। उन्होंने कठिन परिश्रम, संयम, सत्य-पालन और सदाचार-पूर्वक विद्याभ्यास किया है, परिणाम-स्वरूप उनके विद्यानुराग का वाग्देवी के चरणों में प्रथमोपहार-रूप यह "छात्र-पथ दर्पण" नामक पुस्तक प्रकाशित हो रही है। इसे मैंने सामान्य-रूप से देखा। वर्तमान छात्रों के जीवन-पथ को प्रशस्त करने के लिए यह पुस्तिका बहुत सहायक होगी। इसमें छात्रों के कर्त्तव्य और आचार आदि का शास्त्रीय प्रमाण-सम्पन्न-रोचक वर्णन किया गया है। मैं इनकी हृदय से सफलता चाहता हूँ।

रामचन्द्र मालवीय
प्रस्तोता (रजिस्ट्रार)
२३-७-६६

(२) वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के सम्मानित प्राध्यापक महामहोपाध्याय पं० श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित जी का आशीर्वचन :—

आज मैंने श्री सूर्य प्रसाद मिश्र निर्मित "छात्र-पथ-दर्पण" आद्योपान्त देखा। यह एक नई सूझ है, जिसको पढ़कर छात्र योग्य, शान्त, सदाचारी बनेंगे। मुझे निश्चय है कि छात्रों के चरित्र-सुधारने के लिए एवं योग्य, शान्त, सदाचारी और परिश्रमी बनाने के लिए आज तक किसी का इस तरफ ध्यान नहीं गया।

यह संस्कृत-छात्रों के लिए ही नहीं बल्कि जो अंग्रेजी-विभाग के छात्र एवं देखा-देखी संस्कृत-विभाग के छात्र जो उपद्रव, अशान्ति आदि कार्यों में सरकार के प्रतिकूल उदण्ड होकर पढ़ते हैं। वे इस पुस्तक को पढ़कर अवश्य ही सुयोग्य और शान्त-प्रकृति बनेंगे।

यह देश के ऊपर उपकारक-पुस्तक है। सरकार को ध्यान देना चाहिए कि छात्रों को सुधारने के लिए ऐसी ही पुस्तकों की आवश्यकता है।

देश-सरकार छात्रों का सुधार करने वाले श्री सूर्य प्रसाद मिश्र का सदा ऋणी रहेगा।

महा महोपाध्याय पं० श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित
२६-७-६६

(३) वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के भूतपूर्व वेदान्त विभागाध्यक्ष, वयोवृद्ध आचार्य पं० श्री रघुनाथ शर्मा का आशीर्वचन :—

अयं "छात्र पथ-दर्पणः" स्वार्थमनुगतः स्थाली-पुलाकन्यायेन दृष्टो मया । अयश्च न केवलं संस्कृतच्छात्राणामेवोपकरिष्यति किन्तु मातृ-भाषायां निबद्धः सर्वेषामेवच्छात्राणां भारतीयाना-मित्यस्याध्ययनात्प्रतीयते ।

अयश्च प्राचीनानि सुभाषितानि मूलत्वेनाश्रित्य प्रवृत्तो न कथमपि अप्रामाण्यमास्यत इति मे दृढः सर्गः । मन्ये एनं ग्रन्थमधीत्य छात्राः अवश्यमेव स्वविधेयं विज्ञास्यन्त्याचरिष्यन्ति च स्वीयं कर्तव्यजातमिति ।

रघुनाथ शर्मा
छाता, बलिया
२३–७–६६

(४) वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के साहित्य विभाग के अध्यक्ष का आशीर्वचन :—

पं० श्री सूर्य प्रसाद मिश्र, साहित्याचार्य ने "छात्र-पथ-दर्पण" नामक पुस्तक अति मनोरम लिखी है । मैं आशा करता हूँ कि छात्र यदि इसका अनुसरण करेंगे, तो अवश्य वे महा-महिमाशाली होंगे ।

राम कुबेर मालवीय
२१–७–६६

(५) वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के छात्र-संरक्षक तथा न्याय-वैशेषिक-विभागाध्यक्ष पं० श्री बदरी नाथ शुक्ल जी का आशीर्वचन :—

पं० श्री सूर्य प्रसाद मिश्र की पहली रचना "छात्र पथ-दर्पण" के रूप में मेरे समक्ष प्रस्तुत हुई, मैंने इसके कुछ अंश देखे, मुझे ऐसा लगा कि यह पुस्तक कलेवर में संक्षिप्त होने पर भी गुणों में पर्याप्त विस्तृत एवं विपुल है। श्री मिश्र ने अभी छात्रावस्था की पूरी सीमापार नहीं की है। इस अवस्था में जिन गुणों को इन्होंने अपने उन्नयन के लिये उपादेय पाया और जिन्हें समस्त छात्र-समाज के लिए श्रेयस्कर समझा, उनकी अच्छी चर्चा इस पुस्तक में इन्होंने की है। उन्होंने जिन बातों को छात्रों के लिए ग्राह्य बताया है वे केवल छात्रों ही के नहीं किन्तु उनमें अनेकों पूरे मानव-समाज के लिये कल्याण-कारी हैं।

मेरे विचार से प्रत्येक छात्र को इस पुस्तक की एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए और उसे अपने नित्यस्वाध्याय का विषय बनाकर उससे अपने पथ का परिष्करण करना चाहिए। इस उपयोगी पुस्तक को लिखने के हेतु मैं श्री मिश्र को आशी:पूर्ण धन्यवाद दे, ऐसे कार्यों के लिए उत्साहित करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

बदरी नाथ शुक्ल
२३–७–६६

(६) वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के प्राचीन-व्याकरण-दर्शनागम के विभागाध्यक्ष का आशीर्वचन :—

आयुष्मान् श्री सूर्य प्रसाद मिश्र कृत "छात्र पथ-दर्पण" नामक ग्रन्थरत्न का आज मैंने अवलोकन किया। मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ कि प्राचीनतम महर्षियों के आश्रमों में रहकर छात्र जिन आदर्शों का पालन करते हुए शिक्षा-ग्रहण करते थे। उन्हीं आदर्शों का इस लघु-काय पुस्तक में बड़े विचित्र ढंग से समावेश किया गया है। साथ ही उक्त व्यक्ति-विशेष प्रायः इन आदर्शों के पालक भी हैं।

अतः इन शिक्षाओं का अधिक-प्रभाव छात्र-वृन्द पर पड़ना स्वाभाविक है। भगवान् सर्वान्तिर्यामी से मेरी प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ के सब नहीं तो कुछ ही आदर्श-रत्न प्रत्येक छात्र अवश्य ले तथा अपने भविष्य को ही नहीं अपितु भारत-वसुन्धरा के मस्तक को समुन्नत करे।

प्रमापक :—
राम प्रसाद त्रिपाठी
२२-७-६६

(७) वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के शिक्षा-शास्त्री (बी० एड०) विभाग के अध्यक्ष का आशीर्वचन :—

श्री सूर्य प्रसाद मिश्र द्वारा लिखित "छात्र-पथ-दर्पण" मैंने देखी। इसमें छात्र-जीवन के विकास में उपयोगी सुझाव

दिये गये हैं और प्रेरणा देने वाली सूक्तियाँ भी आकलित की गई हैं।

यह लघु-ग्रन्थ निश्चय ही छात्रों को पढ़ना और मनन करना चाहिए। इसमें बताये गये सुझाओं के अनुसार चलने पर निश्चय ही छात्रों के चरित्र, विद्या, बुद्धि और नियमित कार्य करने की क्षमता का विकास होगा।

मैं चाहता हूँ कि छात्र इस ग्रन्थ का लाभ उठावें। इसमें निर्देशित-बातों के अनुसार यथाशक्ति चलते हुए छात्र अपने समय का एक-एक क्षण उपयोगी और लाभ-प्रद बनायें। इस ग्रन्थ द्वारा अपने व्यक्तिगत-जीवन का विकास करने के साथ-साथ समाज-कल्याण के सम्पादन में भी छात्र योग दे सकते हैं।

अतः आशा है कि छात्र अपने भविष्यत् को उत्कर्षमय बनाने के लिए इस ग्रन्थ का अवश्य अध्ययन करेंगे।

अधिक श्रावण शुक्ल ९, सं० २०२३ वि० } करुणापति त्रिपाठी
२६-७-६६

(८) वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष का आशीर्वचन :—

श्री सूर्य प्रसाद मिश्र ने अत्यन्त परिश्रम और आस्था के साथ इस लघु-ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ सम्यक् अध्ययन

के उपरान्त एवं आत्मानुभूति के आधार पर लिखा गया है। इसलिए लेखक के प्रत्येक शब्द में बल है।

इस प्रेरणा-दायक ग्रन्थ को पढ़कर छात्र अपने जीवन के मार्ग को ऋजु एवं प्रशस्त बना सकते हैं। यदि इस ग्रन्थ में बताये गये आदर्शों का अनुगमन किया गया तो निश्चय ही आज हमारे देश के शिक्षा-जगत् में व्याप्त अव्यवस्था एवं अनुशासन-हीनता बहुत कुछ दूर हो जायेगी।

आशा है अधिकाधिक छात्र इस उपादेय ग्रन्थ का पारायण करके लाभान्वित होंगे।

शम्भु नाथ सिंह

२२–७–६६

(९) सनातन धर्म इण्टर कालेज हरदोई के प्राध्यापक तथा संस्कृत महा विद्यालय सकाहा के भूतपूर्व प्रबन्धक का आशीर्वचन :—

अध्यापक का कार्य अनादि काल से गौरव-मय रहा है। अतः वह बहुत कठिन भी है। राष्ट्र का जीवन अध्यापक के हाँथ से सुरक्षित रह सकता है। वह राष्ट्र-जीवन का निर्माता है। मानव-जीवन का विधाता है। उसकी पैनी-दृष्टि छात्रों के परिष्कृत जीवन के लिए सदा उन्मीलित ही नहीं प्रत्युत दोषों के परिमार्जन के लिए अपनी ओर भी घूमती रहनी चाहिए।

उनकी क्रिया और वाणी दोनों ही छात्र-पथ के आलोक-स्तम्भ होने चाहिए। छात्रों के लिए "छात्र-पथ-दर्पण" दोषोन्मूलन करने के लिए दैनिक-दर्पण के समान ही उपयोगी बनकर सुसंस्कृत करने की प्रेरणा दे सकेगा। ऐसा कुछ मेरा विश्वास है॥

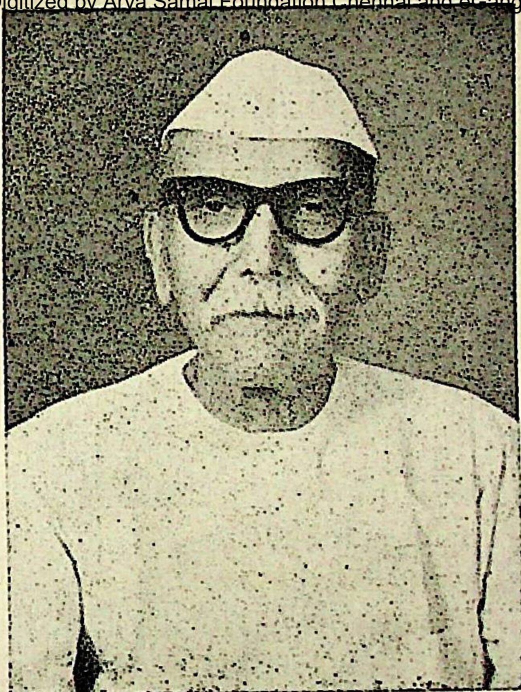
शिवशंकर शास्त्री
२८-१-६६

(१०) श्री हरदोई बाबा मन्दिर के सञ्चालक का आशीर्वचन :—

इस "छात्र-पथ दर्पण" पुस्तक का मैंने अवलोकन किया। वस्तुतः यह पुस्तक छात्रों के कर्तव्य-निर्देश में पर्याप्त-योग करेगी। क्योंकि आज छात्रों में अनैतिकता का रोग प्रचुर-मात्रा में फैल रहा है। उनके मनोभाव दिनोदिन विषाक्त होते चले जा रहे हैं। उनके लिए यह राम-बाण के तुल्य सिद्ध होगी। ऐसा हमारा विश्वास है।

श्री मिश्र जी ने इस पुस्तक को लिखकर एक अत्यावश्यक अङ्ग की पूर्ति की है। मैं इनके इस परिश्रम की सफलता के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ।

राम नारायण दीक्षित
२८-१-६६

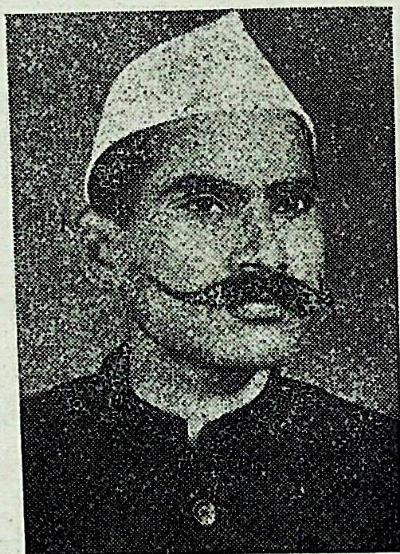


समर्पण

परम-प्रतिभा-सम्पन्न, संस्कृत महाविद्यालय सकाहा के कर्मठ-प्रधान,
वयोवृद्ध प० श्री रघुवर दयालु वाजपेयी जी एडवोकेट के
करकमलों में यह प्रथम पुष्प सनति सादर समर्पितः—

सत्प्रेरणा सदा ही जिनकी, बनी हमारे उर का हार।
उन दयालु रघुवर दयालु को, यह अर्पित सादर उपहार ॥

सूर्य प्रसाद मिश्र



आमुख-लेखक

परम श्रद्धेय, आचार्य यशवन्त सिंह चौहान

साहित्याचार्य, कोविद, साहित्यरत्न

(प्रधानाचार्य)

संस्कृत महाविद्यालय सकाहा, हरदोई

आमुख

संसार के समस्त-प्राणियों में मनुष्य को सर्व-श्रेष्ठ-प्राणी कहा गया है। महर्षि यास्क ने निरुक्त में "मत्वा कर्माणि सीव्यतीति मनुष्यः" इस वचन के द्वारा विवेकशीलता को ही मनुष्य का विशेष गुण माना है। चाणक्य-नीति में भी कहा गया है किः—

आहार-निद्रा-भय-मैथुनानि,
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषो-
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥

अर्थात् अहार-निद्रा भय तथा मैथुन यह चारों मनुष्यों तथा पशुओं में समान रूप से ही हैं, ज्ञान की विशेषता ही केवल मनुष्यों में अधिक है। इस कारण ज्ञान-विरहित-मनुष्य पशुओं के समान ही हैं। "ऋते ज्ञानान्न मोक्षः"

के अनुसार निरतिशय सुख की प्राप्ति का साधन भी ज्ञान ही है तथा यही मानव का परम पुरुषार्थ भी है।

प्राचीन-काल से ही आत्म-कल्याण की भावना से अनुप्राणित-विचार-परम्परा ने विविध-शास्त्रों को जन्म दिया है। तथा नाना-विधि-निषेधात्मक-शास्त्रों से ही नियमित ब्रह्मचर्यादि आश्रम-व्यवस्था के द्वारा इस चरम-लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मानव की परम साधना रही है। इस आश्रम-व्यवस्था का भी एक निश्चित क्रम है। जैसा कि शास्त्रकारों ने कहा भी है कि "ब्रह्मचारी भूत्वा गृही भवेत्, गृही भूत्वा बनी भवेत्, बनी भूत्वा प्रब्रजेत्"।

स्पष्ट है, कि मानव-जीवन की सफलता का प्रथम सोपान ब्रह्मचर्याश्रम (छात्र-जीवन) ही है। गुरुओं की आज्ञानुसार नियमों के पालन करने के साथ ब्रह्मचर्य-पूर्वक-विद्याध्ययन करना ही ब्रह्मचारी (छात्र) का परम कर्तव्य है। संसार के विविध-राजनैतिक एवं प्रापश्चिक-वातावरणों से तटस्थ रहकर ज्ञानार्जन की दिशा में तन्मयता-प्राप्त-छात्र ही अपने जीवन को सफल वना सकता है। अतः प्राचीन-काल से ही गुरुओं का ध्यान भी छात्र-जीवन की सफलता की ओर पूर्णतया रहा है। प्रत्येक

सद्गुरु अपने छात्रों को कर्त्तव्य-पथ-निर्देश करने में सर्वथा जागरूक एवं प्रयत्नशील रहा है। आचार्यों के सदुपदेशों से ही मेधावी, ओजस्वी एवं वर्चस्वी छात्र अपना कल्याण करने के साथ ही समाज एवं राष्ट्र का सर्वथा हित-साधन करने में समर्थ हो सके हैं। शतपथ-ब्राह्मण में इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही कितनी सार-सिञ्चित-घोषणा की गयी है।

"आचार्यवान् पुरुषो वेद"

वर्तमान समय के विषाक्त एवं दूषित-वातावरण से प्रभावित छात्र प्रायः पथ-भ्रष्ट होते चले जा रहे हैं। यह राष्ट्र का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है। अतः ऐसे अवसर पर छात्र-हितकारी एवं प्रेरणा दायक साहित्य-सर्जना की अतीव आवश्यकता है। जिससे छात्रों को अपने आचार-विचार एवं कर्त्तव्य-पथ का परिज्ञान हो सके। यह कार्य राष्ट्र-निर्माण का एक आवश्यक अङ्ग है। बड़ी प्रसन्नता की बात है, कि महाविद्यालय के साहित्याध्यापक श्री सूर्य प्रसाद मिश्र, साहित्याचार्य ने 'छात्र-पथ-दर्पण' नामक लघु-काय-पुस्तिका लिखकर सामयिक-आवश्यकता की ओर ध्यान दिया है। छात्रों के लिए मननीय एवं आचरणीय दैनिक व्यवहारोपयोगी विषयों की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट

कराके उनका पर्याप्त मार्गदर्शन कराने में यह पुस्तिका अवश्य उपादेय सिद्ध होगी। आशा है कि छात्र इसके द्वारा अधिकाधिक लाभान्वित होंगे।

यशवन्त सिंह चौहान, साहित्याचार्य,
कोविद, साहित्य-रत्न,
२३-४-६६

(प्रधानाचार्य)

श्री शिवशंकर हरण आदर्श
संस्कृत महा विद्यालय
सकाहा, हरदोई

दो शब्द

आज प्रायः हमारे सभी शिक्षा-केन्द्र राजनीति एवं अनुशासन-हीनता के आवास बनते चले जा रहे हैं। छात्रों में उच्छृङ्खलता के भाव प्रचुर-मात्रा में प्रसूत हो रहे हैं। सम्भवतः इसका मुख्य कारण है कि उन्हें अपने मार्ग का सच्चा परिज्ञान नहीं। उनके मार्ग को आलोक-प्रदान करने वाले साहित्य की नितान्त अपेक्षा है।

पाश्चात्य-संस्कृति हमारे छात्रों के कोमल मस्तिष्कों में विलास-भाव-उत्पन्न कर रही है। इतना ही नहीं वह हमारी भारतीय-संस्कृति को भी आत्मसात् करना चाहती है। दुःख की बात है कि भूले भटके अपनी संस्कृति को भी अपनाने में संकोच करते हैं।

अतः हमें बड़े ही विवेक से कार्य करना है। अपने अतीत को भूलना नहीं है। अपने प्राचीन गौरव को भी अक्षुण्ण बनाये रखना है। प्राचीन-काल में कभी भी हमारे तपःपूतमनीषियों ने धन की याचना नहीं की। वह केवल सुबुद्धि एवं मेधा-शक्ति के लिये प्रार्थना करते रहे।

ऋषियों के इस भारत में हमारे छात्रों को भी सरल-जीवन यापन करने का अभ्यास करना चाहिये। क्योंकि यही सुचरित की

प्रथम-सोपान-पंक्ति है। उन्हें प्रतिदिन ईश्वर से सुबुद्धि एवं मेधा-शक्ति के लिये प्रार्थना करनी चाहिये।

प्रस्तुत "छात्र-पथ-दर्पण" का समुद्देश्य यही है। यदि इससे छात्र-जगत् को कुछ प्रेरणा-स्रोत मिल सके, तो यह अल्प-प्रयास भी क्षेम-पथ पर टिमटिमाकर कुछ आलोक कर सकेगा।

माँ शारदे ! वीणा स्वरों में,
तान भरदे अब यही।
हो छात्र-हित-साधक सदा,
यह छात्र-पथ-दर्पण सही॥

विनीत—

लेखक



छात्र-पथ-दर्पण

राष्ट्रीय-वन्दना

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधी महारथो जायताम् दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ता योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

—यजुर्वेद

राष्ट्रीय-वन्दना

—हे प्रभु ! हमारे देश में तेजस्वी, स्वाध्याय-निरत और कर्तव्य-निष्ठ विद्वान् ब्राह्मण उत्पन्न हों।

—हमारे देश में शूर-वीर, रण-विद्या के ज्ञाता, शत्रुओं से लोहा लेने वाले विजयी योद्धा उत्पन्न हों।

—हमारे देश में गायें दुधारू, बलशाली बैल तथा अति तीव्र-गति वाले घोड़े उत्पन्न हों।

—हमारे देश की नारियां सर्वगुण सम्पन्न हों और हमारे युवक शिक्षित, वीर, सभ्य, सुसंस्कृत तथा ईश्वर-विश्वासी हों।

—हमारे देश में समय पर वर्षा हो, खेतों में भरपूर फसल हो, प्रत्येक घर धन-धान्य से पूर्ण रहे।

—हमारा देश स्वयं अपनी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हो।

विषय-प्रवेश

आज का छात्र ही अपने देश के कल का भाग्य-विधाता है। अतः उसका दायित्व पर्याप्त है। यह विज्ञान का युग है। सभी राष्ट्र अपने-अपने विकास में संलग्न हैं। अतएव हमें भी जागरूक रहते हुए अपने पथ पर पुरस्सर होना है। आज आधुनिकता एवं प्राचीनता इन दोनों के समन्वय की अत्यधिक अपेक्षा है। क्योंकि आधुनिकता की सुसंस्कृत भूमि प्राचीनता के सिद्धान्तों की मूर्त स्मृति है।

छात्र-जीवन और उसका महत्त्व

मानव-जीवन का आधार-स्तम्भ छात्र-जीवन है। इसी पर उसके भावी-प्रासाद खड़े होंगे। इसकी नींव जितनी ही सुदृढ़ होगी, भावी मानव-जीवन उतना ही विकसित होगा। इसी से अपेक्षित राष्ट्रहित भी सम्भव है।

छात्र-जीवन और उसकी सफलता के उपाय

छात्र अपने जीवन की सफलता हेतु आलस्य से घृणा तथा प्रमाद से बैर करें। पुरुषार्थ को ही अपना जीवन समझें। जिह्वा चाटुकार भोजन तथा गद्दों पर सोने की चाह न करें। किसी कवि ने क्या ही अच्छा कहा है :—

मधुकरी आहार कर, एकान्त का कर त्याग दे।
भोजन सलोने चटपटे, मिष्ठान्न से तज राग दे॥
रूखा मिले सूखा मिले, जैसा मिले मत ध्यान दे।
भगवत्प्रसादी जानकर, आहार को सम्मान दे॥

विद्यार्थी को अपने जीवन की शिक्षा तो पशु-पक्षियों से भी ग्रहण करनी चाहिए।

काकचेष्टा वक-ध्यानम्
शुनो निद्रा तथैव च।
स्वल्पहारो गृहत्यागः,
विद्यार्थी पञ्च-लक्षणः॥

अर्थात् विद्यार्थी को कौंए जैसा सतत सचेष्ट, बगुले जैसा एकतान ध्यान और कूकुर के समान सजग नींद लेनी चाहिए, भोजन भी थोड़ा और घर से अधिक लगाव नहीं करना चाहिए।

ये गुण विद्यार्थी के लिए उपादेय हैं। छात्र को अपने मस्तिष्क के प्रौढ़-ज्ञान को अक्षरों की शक्ति से प्रकट करने के लिए लेखनी को सूक्ष्म और मुख को मधुर मुखर करना चाहिए। जिससे वह अर्हता और योग्यता के आँचल का एक साथ आश्रय ले सके। छात्र के गले में हार डाला जा सकता है, किन्तु उसकी रक्षा उसे स्वयं ही करनी होगी प्रारम्भिक संकटों के

आक्रमण से छात्रों को अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होना चाहिए। क्योंकि—

सुख दुःख की चिन्ता न करो,
ये यों ही आते जाते हैं।
फूल सदा काँटों में खिलते,
सेजों पर मुरझाते हैं॥

छात्र और प्रातःजागरण

छात्र को प्रातः ब्राह्म-मुहूर्त में उठने का अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि इस समय वातावरण में निस्तब्धता रहती है। जिससे शरीर में सात्त्विक-भावों के उदय के लिए अवसर मिलता है। मन भी कुछ निश्छल रहता है। इस समय मन किसी भी साँचे में ढाला जा सकता है। प्रातः समीरण भी स्वास्थ्य-वर्धक होता है। साढ़े तीन बजे से साढ़े पाँच बजे तक का समय अतीव मूल्य-वान् है।

अतः इसे व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। जो भी छात्र जल्दी सोता और जागता है, सदा उसका जीवन सुखमय बीतता है।

छात्र और प्रातः कृत्य

छात्र जीवन में प्रातः कृत्यों का पर्याप्त महत्त्व है। क्योंकि इसके द्वारा उसमें मनोबल तथा आत्मबल की अभिवृद्धि होती

है। छात्र को शय्या-त्याग के अनन्तर भगवत्स्मरण करने के बाद अपने से बड़ों को अभिवादन करना चाहिए। इससे आयु और बल की अभिवृद्धि होती है। जो छात्र प्रातः न उठकर आठ बजे तक सोये रहते हैं, उनके शरीर में मल-मूत्र के द्वारा विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

छात्र और व्यायाम

छात्र को अपनी दिनचर्या को गतिशील बनाने के लिए व्यायाम अवश्य करना चाहिए। इससे शरीर में स्फूर्ति, मन में प्रसन्नता तथा सतत कार्य करने की भावना रहती है। लिखा भी है :—

व्यायाम-पुष्ट-गात्राणां बुद्धिस्तेजो यशो बलम्।
प्रवर्धन्ते मनुष्याणां तस्माद् व्यायाममाचरेत् ॥ १ ॥

अर्थात्—व्यायाम से पुष्ट शरीर में बुद्धि, तेज तथा बल की समृद्धि रहती है। अतः सभी को व्यायाम करना चाहिए। व्यायाम शक्ति के अनुसार अपेक्षित है। छात्रों को भारतीय-व्यायामों की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

छात्र और आराधना

छात्र को सदैव अपने लक्ष्य की आराधना करनी चाहिए। इसकी पूर्ति के लिए आध्यात्मिक शक्ति की भी आवश्यकता है।

अतः प्रतिदिन सन्ध्या और ईश्वर की उपासना अवश्य करनी चाहिए। जिससे आध्यात्मिक-चेतना का विकास हो सके, जो जीवन का परम पुरुषार्थ है।

छात्र और जलपान

छात्र की भोजन-मात्रा स्वल्प तथा सात्त्विक होनी चाहिए। उसका जलपान भी संयमित और नियमित हो। क्योंकि अधिक भोजन से आलस्य प्रसूत होता है। जलपान का उद्देश्य रसना-लोलुपता नहीं, स्वास्थ्य-पोषण होना चाहिए। क्योंकि सभी छात्रों का प्रथम-सोपान शरीर-संरक्षण ही भोजन और जलपान का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। षट्रस स्वादुता से जिह्वा के अग्रभाग की परिपुष्टि भले ही हो, भोजन की परिणति से सम्बन्ध नहीं।

छात्र और भोजन

छात्र को सदैव याद रखना चाहिए कि आहार की शुद्धि से शरीर की शुद्धि सम्भव है। अतः पवित्रता पूर्वक सुपाच्य एवं सात्त्विक भोजन जहाँ तक सम्भव हो सके स्वयं निर्माण करके करना चाहिए। क्योंकि अधिकांश दूकानों के बने सामान अस्वच्छ एवं अपवित्र होते हैं। इनके खाने से कुविचार उत्पन्न होते हैं। जिनका विषम-परिणाम चरित्र पर भी पड़ सकता है।

यदि छात्र स्वयं भोजन बनाकर करता है तो इससे उसमें आत्म-निर्भरता की भी धीरे धीरे अभिवृद्धि होती है। वस्तुतः संसार में दूसरे पर निर्भर रहने से अपार कष्ट एवं अत्यधिक दुःखों का सामना करना पड़ता है। समय पर भोजन की उपलब्धि भी नहीं हो पाती।

हमारे बुद्धिजीवी सदा भोजन की सात्विकता और पवित्रता की ओर सचेष्ट रहें हैं। महात्मा गान्धी जी इस दिशा में पूर्ण जागरूक रहते थे। वे कहीं भी जाते थे, लेकिन उनकी बकरी सदैव साथ रहती थी।

छात्र और विश्राम

सतत कार्यरत रहने से छात्रों के मास्तिष्किक-ज्ञानतन्तु शिथिल पड़ जाते हैं। वे पुनः भोजन के बाद विश्राम करने से परिपुष्ट होते हैं। अतः छात्रों को अपने मस्तिष्क तथा शरीर को आराम पहुँचाने के लिए कम से कम ६ घण्टे रात को अवश्य विश्राम करना चाहिए। इसके विना स्वास्थ्य में ह्रास होने की सतत सम्भावना रहती है।

छात्र और कर्त्तव्य

छात्र को सर्वदा जागरूक एवं कर्त्तव्य-परायण होना चाहिए। क्योंकि कर्त्तव्य भावना से भी परे है। उसे अधिक

व्यावहारिक बनने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि इससे वह अपने लक्ष्य से च्युत हो सकता है।

छात्र और चरित्र

छात्र की सबसे बड़ी निधि है उसकी सच्चरित्रता। वही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है। चरित्रवान् व्यक्ति ही संसार में मान्य है। आचार-हीन-व्यक्ति को वेद भी पवित्र करने में सक्षम नहीं हैं। यथाः—"आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः" इत्यादि।

प्रतिभा मस्तिष्क की वस्तु है और चरित्र हृदय की शक्ति है। हृदय की शक्ति से ही संसार सञ्चालित है। संक्षेप में चरित्र के द्वारा ही छात्र अपने में मेधा, प्रतिभा, शक्ति, तेज, विनय तथा स्वावलम्बन प्रभृति गुणों को निखार सकता है।

छात्र और कामना

छात्र के हृदय में सदा यह दृढ़-भावना रहे कि "हम सब विद्यासम्पन्न तेजस्वी बनें" इतर वस्तुओं में उसे अपने मन को नहीं जाने देना चाहिए। क्योंकि शेष चीजें इसी की मुख-प्रेक्षिका हैं। जैसे एक कमरा में रखीं चीजें प्रकाश से दृष्टिगत हो जाती हैं। वैसे ही ज्ञानालोक से हृन्मन्दिर भी आलोकित हो उठता है और समीहित चीजें प्राप्त होने लगती हैं।

छात्र और सन्तोष

छात्र को अपनी हर परिस्थिति में सन्तोषी होना चाहिए। क्योंकि उसके साथ ईश्वर सदैव रहता है। कभी भी उसे अपनी स्थिति से आत्म-हीनता का भाव नहीं लेना चाहिए। ज्ञानार्जन की दशा में तो उसका असन्तोष भूषण है। लेकिन अन्य क्षेत्रों में वह ठीक नहीं। वहाँ पर सन्तोष की ही अपेक्षा है। क्योंकि इसके बिना सच्ची शान्ति एवं सुख की अनुभूति नहीं हो सकती है।

छात्र और राजनीति

छात्र को राजनीति से दूर रहना चाहिए। इससे उसके विद्यार्जन में बाधा पड़ती है। क्योंकि लिखा है कि

अहेरिव गणाद्भीतः, सम्मानान्नरकादिव।
राक्षसीभ्यः इव स्त्रीभ्यः, स विद्यामधिगच्छति ॥

अर्थात् विद्यार्थी के लिए समूह (दल) भयंकर सर्प है, सम्मान नरक का कुण्ड है और स्त्री सर्वस्व हरण करने वाली राक्षसी है। अतः इन से दूर रहना चाहिए। यद्यपि राजनीति भी जीवन का एक अङ्ग है परन्तु छात्र जीवन का नहीं। राजनीति जा बौद्धिक-ज्ञान पुस्तकों से किया का सकता

है, क्रियात्मक ज्ञान के लिए अवसर जीवन के दूसरे और तीसरे आश्रम में मिलेगा।

छात्र और शान्ति

छात्र का मस्तिष्क सन्तुलित, प्रशान्त एवं निर्भीक होना चाहिए। उसे सदैव अनावश्यक वार्तालापादि से बचते रहना चाहिए। क्योंकि इससे समय का अपव्यय होता है। जिस छात्र का मस्तिष्क अशान्ति से संकुल है तो वह तत्त्वज्ञान से सदैव पराङ्मुख रहेगा। शरीर पोषण के लिए भोजन के समान मस्तिष्क पोषण के लिए स्वाध्याय और शान्ति अपेक्षित है। छात्र-जीवन सर्वाङ्गीण विकास की व्यायाम-शाला और जीवन निर्माण की प्रयोगशाला है।

छात्र और गम्भीरता

छात्रको प्रारम्भ से ही गम्भीर बनने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि यह वह सुगुण है जिससे विद्वता का प्रकाशन होता है। गम्भीर व्यक्ति ही संसार में कुछ कर सकता है। यदि वह गम्भीर नहीं है तो संसार के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। क्योंकि गम्भीरता व्यक्तित्व निर्माण का एक उपादेय उपकरण है। इससे वह अपने भावों का संगोपन भी कर सकता है तथा अपनी गरिमा की भी रक्षा करने में सक्षम हो सकता है। क्योंकि गम्भीर सागर ही रत्नाकर बनता है, तुच्छ पल्वल नहीं।

छात्र और मानप्रतिष्ठा

छात्र को अध्ययन काल में मान-प्रतिष्ठादि का अभिलाषुक नहीं होना चाहिए। क्योंकि यह अपकर्षक-तत्व है। विनयादि गुण मान-प्रतिष्ठा के जनक हैं। उसके गुण अर्जन का यही द्वार है। स्वगुणोत्कर्ष सुनकर विनीत होना ही महानुभावता है। अभिमान मूर्खता का प्रथम चरण है, दोषों का आगार है और उन्नति पथ का तीव्र-कण्टक है। दोष-परिमार्जन और मल-प्रक्षालन के लिये छात्र-जीवन स्वच्छ सरोवर है। इसी से गुण-सौरभ का ग्रहण सम्भव है।

छात्र और सादगी

छात्र को अपना-जीवन सादगी से व्यतीत करना चाहिए। क्योंकि यह काल शरीर साज-सज्जा का नहीं अपितु मस्तिष्क अलङ्करण का है। विविध-विकास-उर्वरक यहीं वाह्याभ्यन्तरिक स्वास्थ्य प्रदान करते हैं। जिससे ह्रास का भय सदा के लिये दूर हो जाता है। यहाँ सादगी के माने गरीबी अथवा दुःख नहीं अपितु सादगी का सच्चा आशय है कि सन्तोष तथा सतत स्वकर्त्तव्यपरायणता।

छात्र और वाणी

छात्र को अपनी वाणी को सुसंस्कृत बनाना चाहिए।

क्योंकि यह वह यन्त्र है कि जिसके द्वारा अपने समस्त ज्ञान-विज्ञान को वह प्राप्त कर सकता है। आत्मगत भावों की अभिव्यक्ति भी इसी के द्वारा सम्भव है।

छात्र और अवकाश

छात्रों को अपने अवकाश का सदुपयोग करना चाहिये। क्योंकि इससे उनकी प्रगति में सहयोग मिलता है। इन अवकाशों में उन्हें अपने गाँव एवं निकटवर्ती क्षेत्रों में जाकर देश-प्रेम प्रभृति गुणों को जागृत करना चाहिये। प्राचीन काल में छात्रों का जनता के प्रति सौहार्द रहता था। आज जिसे छात्र आत्म-सम्मान के प्रतिकूल समझते हैं।

छात्र और अभ्यास

छात्र-जीवन में अभ्यास की पर्याप्त आवश्यकता है। क्योंकि जो चीज आरम्भ में कठिन मालूम होती है, वही अभ्यास से सरल हो जाती है। अभ्यास की आत्मा दैनिक-आवृत्ति एवं तन्मयता है।

छात्र और ध्यान

छात्र के लिये ध्यान प्रकाश तुल्य है। उसके बिना वह कुछ नहीं कर सकता है। ध्यान को एकाग्र करने के लिए मन-तुरङ्ग

को वश में लाना पड़ता है। यह मन बड़ा ही चञ्चल है। अतः इसका निग्रह धीरे धीरे अभ्यास से सम्भव है। जब तक व्यर्थ-चिन्तन एवं कुविचार हैं तब तक ध्यान के लिये अवसर कहाँ मिल सकता है और आत्मा तथा मन के विना एक हुये ज्ञानोदय भी सम्भव नहीं।

छात्र और ब्रह्मचर्य

छात्र में प्रतिभा तथा ओज प्रभृति दिव्य गुणों का आधान ब्रह्मचर्य के द्वारा ही होता है। इसके द्वारा ही आत्मिक-शक्ति एवं सौन्दर्य की सच्ची उपलब्धि होती है। इसके द्वारा मनुष्य संसार में ऊँचे से ऊँचे कार्य कर सकता है। छात्रों में कुविचार ही इसके नाशक हैं। यथाः—

यस्मिन् प्रदीपे शलभन्ति दोषाः,
यस्मिन् सुधान्शौ परितापशान्तिः।
यस्मिन् समुद्रे गुणरत्न - भूतिः,
तद् ब्रह्मचर्यम् सुविचारलभ्यम् ॥१॥

आज बड़े दुःख की बात है कि "छात्र-बन्धु" अपनी प्राचीनता को एकदम भूलते जा रहे हैं। हमारे मनीषियों ने छात्र को जो जो चीजें असेव्य कहकर निषेध की थीं। वे वस्तुतः

त्याज्य ही हैं। क्योंकि वे समस्त उपकरण उत्तेजक एवं ब्रह्मचर्य-व्रत बाधक हैं।

छात्र और सुख

छात्र को अधिक-सुख के अन्वेषण में न रहना चाहिये। क्योंकि अज्ञतावश वह जिसे सुख कहता है, वह क्षणिक एवं परिणाम में विषम है। इसी से हमारे ऋषियों ने पहले से ही स्पष्ट कह दिया है कि :—

सुखार्थी चेत्त्यजेद् विद्याम्,
विद्यार्थी चेत्त्यजेत्सुखम् ॥

वस्तुतः विद्यार्थी का सच्चा-सुख उसकी परिपूत-ज्ञानराशि ही है। यदि वह विद्वान् बन जाता है तो उसका भावी-जीवन सुखमय व्यतीत होगा।

छात्र और अनुशासन

छात्र को हमेशा अनुशासित रहना चाहिए। क्योंकि अनुशासन हीनता की प्रवृत्ति से कभी भी कोई आज तक विकसित नहीं हुआ है। छात्र को सर्वदा शिष्ट एवं सद्‌मनोवृत्ति वाला होना चाहिए। आजकल अनुशासन का अर्थ लोग शोषण करते हैं। लेकिन यहाँ हमारा यह आशय नहीं है। अनुशासन का

तात्पर्य है, छात्र को विनीत एवं शिष्ट ढंग से विद्यार्जन करते रहना ।

छात्र और परिस्थिति

छात्र को कभी भी परिस्थिति का मुखप्रेक्षक नहीं होना चाहिए क्योंकि जब उसमें ऊँची-ऊँची परिकल्पनायें प्रसूत होती है तो सर्व प्रथम उनके कार्यान्वयन के लिए उसे तीन मन्जिलें पार करनी होती हैं परिहास, उपेक्षा तथा संघर्ष। क्रमशः इनके सन्तरण के लिए मौन, रति और तटस्थता का अवलम्बन लेना चाहिए।

छात्र और स्वाभिमान

छात्र में स्वाभिमान का पुट रहना चाहिए। यदि उसमें यह नहीं है तो वह निर्जीव है। उसे कभी भी परावलम्बी नहीं बनना चाहिए। क्योंकि:—

प्राणि पदार्थ परिस्थिति से,
तुम कभी न रक्खो कुछ भी आस।
आशा करो आत्म-सुख की,
जो हर हालत में रहता पास ॥१॥

स्वावलम्बी छात्र ही अपने को निखार सकता है और संसार

में कुछ कर सकता है। क्योंकि इसके विना छात्र जीवन क्या कोई भी जीवन गतिशील नहीं बन सकता है।

छात्र और परिश्रम

छात्र को आत्म-विकास के लिए शक्ति-भर परिश्रम करना चाहिए। उसे अपने इस प्राप्त स्वर्णिम अवसर को व्यर्थ नहीं व्यतीत करना चाहिए। क्योंकि यह क्षण जीवन में पुनः नहीं प्राप्त हो सकता। "मुधावेलात्ययोमौर्ख्यम्" की सुसंस्कृत पंक्ति स्मरण करना चाहिए।

जो छात्र परिश्रम करता है। उसकी सफलता चिरसंगिनी बन जाती है। उसे कभी भी असफलता नहीं प्राप्त हो सकती। क्योंकि "उद्यमी नावसीदति" अर्थात् परिश्रमी कभी भी दुःखी नहीं हो सकता।

छात्र और विद्यार्जन के उपाय

हमारे मनीषियों ने छात्र को विद्या-ग्रहण करने के लिए तीन उपाय बतलाये हैं:—

गुरूशुश्रूषया विद्या, पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या, चतुर्थन्नोपलभ्यते ॥१॥

अर्थात् छात्र विद्या-ग्रहण प्रथम गुरू की निष्कपट सेवा से,

द्वितीय पुष्कल धन से और तृतीय विनिमय से कर सकता है। इसके अतिरिक्त चौथी विद्यार्जन की कोई भी सरणि नहीं है। इसमें शास्त्रकार ने भी गुरू सेवा का प्रथम उल्लेख कर उसी के द्वारा छात्र को विद्या ग्रहण की ओर अधिक सक्रिय रहना चाहिए, इस पर विशेष बल दिया है, ऐसा परिलक्षित होता है। अतः छात्र को बड़ी ही शालीनता से विद्यार्जन करना चाहिए।

छात्र और लेख

प्रत्येक छात्र अपने मनोभाव दो ही द्वारों से अभिव्यक्त कर सकता है। प्रथम लिखित तथा द्वितीय कथित। अतः इन द्वारों को पूर्णतया निखारना चाहिए। क्योंकि यदि लेख उत्तम नहीं है तो उसके विचारामृत को कोई भी ग्रहण नहीं कर सकता और यदि अभिव्यक्ति-कला उत्तम नहीं, तो भी वह समाज में गतिशील नहीं हो सकता है।

छात्र और अभिमान

छात्र को सदैव निरभिमान होना चाहिए। क्योंकि अभिमान वह प्रबलतम शत्रु है कि जो छात्र के विवेक को समाप्त कर देता है। उसे कभी भी यह नहीं सोचना चाहिए कि यह काम मैं ही कर सकता हूं, अन्य कोई नहीं कर सकता। अभिमान का फल

सदा गर्हित ही होता है। अतः इधर छात्रों को पर्याप्त जागरूक रहना चाहिए।

छात्र और माता-पिता

माता-पिता छात्र के आदि गुरू हैं। अतः उसे उनका सम्मान सदैव करते रहना चाहिए। आजः प्राय छात्र अपनी दृष्टि उनके प्रति हेय बनाये हुये हैं। यह सर्वथा अवाञ्छनीय है। छात्र को सर्वदा उनकी सेवा करनी चाहिये। इससे उसे आशीर्वाद मिलेगा। श्रुति ने इसीलिये तो शिक्षा दी है :—

मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, इत्यादि।

छात्र और उसकी मनोवृत्ति

छात्र को सदैव पाप से घृणा करनी चाहिये, पापी से नहीं। उसे जीवमात्र से प्रेम करना चाहिए। क्योंकि उसे इन्हीं के सम्पर्क से अपने लक्ष्य को अधिगत करना है। जिसके प्रति घृणा उद्भूत होती है उसके मूल कारण पर दृष्टि-निक्षेप करनी चाहिए और उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसमें उत्तेजना की आवश्यकता नहीं है, अपितु शान्त रहने की आवश्यकता है।

छात्र और विकास-सूत्र

छात्र के सर्वाङ्गीण विकास के लिए तीन मान्य सूत्र हैं (१) संयम, (२) औदार्य और (३) विवेकशीलता। इनमें से जो भी शिथिल हुआ, वहीं पर पतन संभव है। अतः उसकी बहुत बड़ी जिम्मेदारियाँ हैं। इसके लिए छात्र ही उत्तरदायी हैं, अन्य कोई नहीं। क्योंकि उसे ही अपने को बनाना है। इसमें किसी का कोई स्वार्थ नहीं है।

छात्र और जनप्रियता

छात्र को अपना प्रत्येक कार्य आत्मोन्नति की समीहा से करना चाहिए। उसे जन-प्रिय भी होना चाहिए। वाह्य-प्रदर्शन के रूप में नहीं अपितु ठोस रूप से। उसे अपने में परोपकार, सहिष्णुता एवं विनम्रता आदि सभी गुणों को निखारना चाहिए। क्योंकि इनके विना उसका जीवन निखर नहीं सकता।

छात्र और बुद्धि

छात्र को बौद्धिक-व्यायाम सतत करना चाहिए। क्योंकि विना इसके वह उस पर नियन्त्रण नहीं कर सकता है। भाग्यादि का निर्माण भी इसी के योग से होता है। यदि गाड़ी का

चालक ठीक ही नहीं होगा तो वह कैसे गतिशील हो सकती है। इसी प्रकार यदि बुद्धि ही परिष्कृत नहीं है तो अन्य कार्य कैसे समुचित हो सकते हैं।

छात्र और आचरण

छात्र पूर्ण शिक्षित तभी कहा जा सकता है जब कि वह सर्वाङ्गीण विकसित हो। उसकी कायिक, वाचिक तथा मानसिक सभी शक्तियाँ पूर्ण विकसित हों। शिक्षित छात्र के प्रत्येक कार्य में एक शास्त्रानुप्राणित प्रमाण एवं क्षमता अपेक्षित है। तभी वह आत्मोन्नति कर सकता है। क्योंकि सामान्य जन उसे अपना प्रतीक मानते हैं।

छात्र और वार्तालाप

छात्र को सदैव मितभाषी बनने का प्रयत्न करना चाहिए। उसे शिष्टाचार पूर्वक अपनी कोई बात पूर्ण विचार कर कहना चाहिए। क्योंकि उसका पर्याप्त महत्व होता है। अनर्गल-प्रलाप से मनुष्य का गौरव तिरोहित हो जाता है। अतः उसे बहुत विचार कर बोलना चाहिए। क्योंकि:—

मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिता, इत्यादि।

छात्र और गुरुजन

छात्र को सदैव अपने गुरुजनों के समक्ष विनीत रहना चाहिए। सदा उसे उनके प्रति श्रद्धा तथा सेवा-भाव की धारणा रखनी चाहिए। हर समय उनसे अपनी ज्ञान-तृषा बुझाने का प्रयास करना चाहिए। उनसे द्रोह-बुद्धि स्वप्न में भी नहीं बनानी चाहिए। क्योंकि इससे सम्बन्धों में (गुरु शिष्यादि) रूपों में शैथिल्य आता है तथा गुरू की दृष्टि भी बदल सकती है।

छात्र और अनुरञ्जन

छात्र को विनोद-प्रिय होना चाहिए। लेकिन वह विनोद संयत एवं शिक्षा-प्रद हो। सतत विद्या के अभ्यास में रत रहने से भी मस्तिष्क विकास नहीं कर सकता। क्योंकि किसी भी काम के करने में आयास होता है। उसे दूर करना नितान्त अपेक्षित है। विशेष कर मास्तिष्किक-कार्य करने वालों को तो इस दिशा में जागरूक ही रहना चाहिए। तभी उनका मस्तिष्क स्वस्थ रह सकता है और वह अपने कार्य को भी ढंग से कर सकते हैं।

छात्र और विचार-सरणि

छात्र की विचार-सणिर सुन्दर होनी चाहिए। विचार

करते समय उसका मस्तिष्क शान्त होना चाहिए। उस समय उसमें कोई भी उद्वेग न होना चाहिए। क्योंकि उद्विग्नता में विचार स्वस्थ नहीं रह पाते। उसे किसी भी वस्तु पर हमेशा पूर्वापर सोचना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता तो परिणाम कभी भी सुखावह न होगा॥ क्योंकि :—

बड़ा भी छोटा यदि काम कीजै,
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै।
विना विचारे यदि काम होगा,
कभी न अच्छा परिणाम होगा॥

छात्र और जीविका

आज भौतिक युग है। इसमें योग्यता का मूल्याङ्कन अर्थ-परक हो गया है। छात्रों की मनोवृत्ति भी अब अधिकांश जीविका की ओर विशेष आकृष्ट जैसी प्रतीत होने लगी है। प्रत्येक व्यक्ति के गतिशील होने के लिए अर्थ की अपेक्षा है। लेकिन सर्वोपरि नहीं। क्या विडम्बना है? कि आज छात्रों को पर्याप्त सुविधायें प्रदान की जा रही हैं किन्तु वह अपेक्षित योग्य नहीं बन रहे हैं। प्रायः वे आरम्भ से ही अपनी जीविका का अन्वेषण करने लगते हैं। उन्हें अपने अध्ययन में पूर्णनिरत रहना चाहिए। जीविका का प्रश्न इसके बाद स्वयं ही हल हो जावेगा। क्योंकि :—

विद्या ददाति विनयम्,
विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति,
धनाद् धर्मं ततः सुखम् ॥

अर्थात्—विद्या विनय को देती है, विनय से मनुष्य में पात्रता आती है, पात्रता से धन मिलता है और धन से धर्म और पुनः सच्ची सुखोपलब्धि होती है।

छात्र और एकता

छात्रों में परस्पर एकता की भावना परमावश्यक है। क्योंकि इसके बिना उसका जीवन सरस न होगा। यह एकता भावनात्मक होनी चाहिए। इसके द्वारा ही वह एक दूसरे के निकट पहुँच सकता है। आत्मरक्षा, देशरक्षा आदि के लिए इसकी पर्याप्त आवश्यकता है। इससे मनुष्य जीवन्त रहता है और कठिन से कठिन कार्यों को आसानी से पूर्ण कर लेता है।

छात्र और उनका भविष्य

आज भारत स्वतन्त्र है। हमारे कर्णधारों की दृष्टि भी हमारे अनुकूल ही परिलक्षित हो रही है। उनका कितना अच्छा

विचार है कि "हमारे देश में कोई भी ऐसा न हो जो अशिक्षित हो" अतः हमें भी सरकार के लक्ष्य के अनुरूप ही कार्य करना चाहिए। हम कोई भी ऐसा कार्य न करें, जिससे कि हमारे भविष्य में अवरोध उत्पन्न हों। क्योंकि हमें आगे बहुत बढ़ना है। यदि हम अपने कर्तव्य का निर्वाह समुचित नहीं कर पाते, तो यह हमारी ही त्रुटी है।

छात्र और देशरक्षा

आज समय सतत सचेष्ट रहने का है। आज कुछ राष्ट्र, जिनकी नीति सदैव विस्तार-वादी रही है। वे अपने में अन्य देशों को आत्मसात् करने की कुचेष्टाएँ कर रहे हैं। अतएव हमें भी जागरूक रहना चाहिए। इसलिए छात्रों की जीवन-चर्या ठोस एवं वैज्ञानिक होनी चाहिए। क्योंकि भविष्य में देश-रक्षा का भार उन्हीं के कन्धों पर है। भारत-महिमा के विषय में तो स्पष्ट ही है कि—

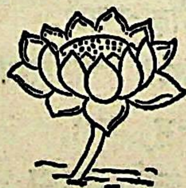
जो प्रकृति की क्रीड़ा-स्थली,
बहती जहाँ भागीरथी।
है धन्य भारत-भू जहाँ,
भगवान् बनते सारथी ॥

उप-संहार

हमारे यहाँ अतीत काल से छात्रों की महिमा रही है। वे राजा से रङ्क तक के स्नेह एवं आदर के भाजन रहे हैं। हमारे शास्त्र इसके प्रमाण हैं। अतः समस्त छात्रों को अपने गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहिए। क्योंकि वे देश की अमूल्य-निधि हैं। देश को उन्हीं पर गर्व है। भारत माँ को भी उन्हीं का भरोसा है। भविष्य में राष्ट्र के कर्णधार भी वही हैं। छात्रों को एकता और अनुशासन में रहते हुए अपनी ज्ञान-राशि को विकसित करते रहना चाहिए। दैनिक अपने अधीत-विषय को तेजस्वी बनाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए :—

तेजस्विनावधीतमस्तु

अर्थात्—हे प्रभो ! हमारा अधीत विषय तेजस्वी बने ?



सूक्ति-आकलन

१—जिस तरह पानी को कोई जल, कोई 'आप', कोई 'वाटर' कहते हैं, उसी तरह एक ही सच्चिदानन्द परमेश्वर को कोई 'अल्लाह' कोई 'हरि' कोई 'गाड' पुकारते हैं।

२—हे प्रभु! मैं तुझसे यही प्रार्थना करता हूँ कि तू मुझे ऐसी वस्तु कभी न दे जो मुझे अच्छी लगने पर भी मेरा अपकार करे और मुझे कुमार्ग पर ले जावे।

३—जो सत्य को जानता है, जो मन से, वचन से तथा शरीर से सत्य का आचरण करता है, वही परमेश्वर को पहचानता है और इन्हीं गुणों से वह त्रिकालदर्शी बनता है।

४—सम्पूर्ण संसार के प्राणियों से प्रेम करना, सीखना ही ईश्वर को पहिचानना है।

५—ईश्वर की रची प्रकृति में कुछ असत्य नहीं।

६—यदि तुम्हारे हृदय में प्रेम है, तो इसका ढ़िढ़ोरा मत पीटो, तुम्हारे हृदय के भाव को अन्तर्यामी परमेश्वर जानते हैं।

७—जिस प्रकार गैस की रोशनी एक ही स्थान से आकर भिन्न-भिन्न आकारों में जलती है परन्तु उसका आधार एक ही होता है, उसी प्रकार से अनेक देशों की अनेक जातियों के धार्मिक लोग भी केवल एक ही परमात्मा के आधार से आते हैं।

८—जिसके चित्त में कभी क्रोध नहीं आता और जिसके हृदय में सर्वदा परमेश्वर बसता है वह भक्त ईश्वर-तुल्य है।

६—जो मनुष्य दूसरे के दोषों की चिन्ता किया करता हैं वह दूरदर्शी नहीं हो सकता, उससे भगवान् का चिन्तन नहीं हो सकता, अपना दोष देखना ही साधक का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

१०—धर्म से धन होता है, धर्म से सुख होता है, सभी वस्तु धर्म से प्राप्त होती है, इस संसार में धर्म ही सार वस्तु है।

११—संकुचित-बुद्धि-वाले ही लोग दुर्बुद्धि के कारण अन्य धर्म पर आक्षेप करते हैं।

१२—मनुष्य में धर्मावलम्बन प्रकृति से ही होता है। क्योंकि मनुष्य धार्मिक पशु है।

१३—अहिंसा, समता, शान्ति, तप, शौच, अमात्सरता इन्हीं के द्वारा सच्चे धर्म की प्राप्ति होती है।

१४—धर्म ही एक ऐसा मित्र है जो मरने पर भी साथ देता है और सब कुछ तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाता है।

१५—दर्शन के अध्ययन से मनुष्य बुद्धिमान होता है परन्तु धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन से हम लोग अच्छे मनुष्य बन जाते हैं।

१६—विश्वव्यापी धर्म एक ही है, संसार के सब धर्म उसके रूपान्तर हैं।

१७—चाहे किसी धर्म में उत्पन्न हुआ हो, सच्चा मनुष्य अपने धर्म का त्याग नहीं करता।

१८—धर्म जीवन की आशा है। यही आत्मरक्षा का अव-

लम्ब है । उसी के द्वारा दूषित वृत्तियों से मुक्ति होती है ।

१६—मनुष्य के उस मन के लिए जो सौन्दर्य के पथ का पथिक है, जो ईश्वर की ओर स्थिर-भाव से लीन है, जो सत्य की छुरी पर घूम रहा है, भूमण्डल ही स्वर्गलोक है ।

२०—जो मनुष्य मान, लोभ, क्रोध, अथवा भय से न्याय को पलट देता है वह अवश्य नरक में जाता है ।

२१—कुपात्र पर दया दिखलाना पापों को बढ़ाना है ।

२२—दया और कृपा कितनी ही की जावे थोड़ी है ।

२३—मित्र चार प्रकार के होते हैं :—

(१) औरस-जिनके साथ रुधिर का सम्बन्ध होता है ।

(२) जिनके साथ विवाह इत्यादि का सम्बन्ध होता है।

(३) जो वंश-परम्परा से मित्र हैं।

(४) जो आपत्ति से बचाये वही सच्चा मित्र है।

२४—वचन रोकना विवेक है।

२५—जिसका आचरण बुरा है, जिसका चित्त सर्वथा पाप में लीन रहता है, जो बुरे स्थान में रहता है, जो दुर्जन है, इससे जो मनुष्य मित्रता करता है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

२६—हित करने वाला शत्रु भी मित्र होता है तथा अहित करने वाला मित्र भी शत्रु होता है, अपने शरीर से उत्पन्न हुआ रोग भी शत्रु है तथा जङ्गल में उत्पन्न औषधि मित्र हैं।

२७—गुप्त-भेद-खोलना, माँगना, निष्ठुरता, चित्त की अस्थिरता, क्रोध, झूठ-बोलना तथा जुआ खेलना ये मित्र के दोष हैं।

२८—आलस्य मनुष्य के शरीर में रहने वाला सबसे बड़ा शत्रु है। उद्यम के समान मनुष्य का कोई बन्धु नहीं है। जिसके करने से मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता।

२९—यदि छोटे लोग भी एकता का अवलम्बन कर लेवें तो उन्हें बलवान् शत्रु भी मार नहीं सकता जैसे प्रबल वायु भी एक स्थान से सब वृक्षों को उखाड़ नहीं सकती।

३०—मित्रता स्थापित करने के लिए मित्र के साथ भलाई करो और शत्रु को मित्र बनाने के लिए शत्रु के साथ भी भलाई करो।

३१—सांसारिक कार्यों में सहायता देने वाला, तथा समयानुसार यथोचित उपदेश देने वाला पुरुष मित्र है, घर में स्त्री मित्र है, रोगी के लिए औषधि मित्र है, मरते हुए के लिए दान सबसे बड़ा मित्र है।

३२—मित्रता स्वयं एक बन्धन है, विपत्ति से वह अधिक पवित्र हो जाता है।

३३—मित्रता दैवी देन है और मनुष्य के लिये अत्यन्त बहुमूल्य वरदान है।

३४—पण्डित वही है, जिसके किये हुए कार्य को, सलाह तथा मन्त्र को दूसरा मनुष्य नहीं जानता।

३५—वास्तव में बुद्धिमान वही है जो दूसरों के भय से बुद्धिमान बनता है।

३६—पण्डित वही है जिसके कार्य में शीत, उष्ण, समृद्धि तथा असमृद्धि विघ्न नहीं डालती। जिसका हृदय सम्मान तथा अपमान के कारण होने पर भी नहीं डिगता-वही पण्डित है।

३७—संसार में ज्ञान ही परम शक्ति है, मनुष्य का साम्राज्य ज्ञान में ही छिपा रहता है।

३८—ज्ञान का उपयोग करने के लिये मनुष्य में बुद्धि होना परम आवश्यक है।

३९—सोच करने से कोई लाभ नहीं, सोच करने वाला, केवल दुःख भोगता है। जो मनुष्य सुख और दुःख दोनों को त्याग देता है, जो ज्ञान से तृप्त और बुद्धिमान है, वही संसार में सुख प्राप्त करता है।

४०—अज्ञानी लोग थोड़ा ही आरम्भ करते हैं परन्तु बहुत व्याकुल होते हैं परन्तु विद्वान् लोग बड़ा कार्य आरम्भ करते हैं फिर भी नहीं घबड़ाते।

४१—बुद्धिमान् पुरुष को सर्वदा बड़ों का संग करना चाहिए, इसी से सुख मिलता है। जो पक्षी बड़े वृक्ष का आश्रय करते हैं, उनको खाने को पर्याप्त फल भी मिलते हैं और वृक्ष की छाया भी मिलती है।

४२—मनुष्य का भूषण रूप है, रूप का भूषण गुण है, गुण का भूषण ज्ञान है, ज्ञान का भूषण क्षमा, सहिष्णुता है।

४३--अपनी जब जैसी अवस्था हो उसके अनुरूप ही अपना व्यवहार रखना चाहिए।

४४--धूर्तता ज्ञान का परम शत्रु है, इससे ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

४५--जहाँ वायु और सूर्य के किरणों की गति नहीं है वहाँ भी बुद्धिमानों की बुद्धि सर्वदा प्रवेश करती है।

४६--ज्ञानियों का कर्तव्य शिक्षा देना है और बुद्धिमानों का इनको सुनना।

४७--विचारवान् ज्ञानी पुरुष को संसार लुभा नहीं सकता, मछलियों के कूदने से समुद्र नहीं उमड़ता।

४८--मूर्खता से पाण्डित्य उतना ही अधिक है, जितना अन्धकार से प्रकाश।

४९--मनुष्य का जीवन अज्ञानता से ही कम होता है।

५०--अज्ञान हठ धर्म की माता है।

५१—जिस प्रकार गिद्ध बहुत ऊँचे उड़ता है परन्तु उसकी दृष्टि पृथ्वी पर पड़े हुए सड़े मांस पर लगी रहती है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष ज्ञान की बड़ी-बड़ी बात करते हैं परन्तु उनका चित्त सर्वदा धन, मान इत्यादि में लगा रहता है।

५२—मूर्खों का समाज यद्यपि पहले हमको हँसाता है और प्रसन्न करता है परन्तु अन्त में मूर्ख-मण्डली बड़ी दुःखदायी हो जाती है।

५३—मूर्ख मनुष्य पण्डितों से, दरिद्र धनिकों से, कुलटा तथा विधवा स्त्री पतिव्रता सौभाग्यवती स्त्रियों से डाह मानती है।

५४—सबसे बड़ा मूर्ख वह है जो अपने को बुद्धिमान समझता है।

५५—अशिक्षित मूर्ख मनुष्य पापी होते हैं।

५६—जिसके चित्त में राग-द्वेषों का नाश हो गया है, वही ज्ञानी, गुणी, दानी तथा ध्यानी है।

५७—गर्व मूर्खता का चिन्ह है। जिस प्रकार शरीर में रुधिर कम होने से उसमें वायु भर कर शरीर को फुला देती है, उसी प्रकार जहाँ बुद्धि की कमी होती है वहाँ अहंकार के भर जाने से मन फूल जाता है।

५८—बिना पूर्ण रूप से विचार किये हुए किसी मनुष्य को अनुपम चरित्र वाला या दुश्चरित्र कहना परम मूर्खता है।

५९—जैसे अँधेरे में सभी रंग समान देख पड़ते हैं, उसी प्रकार से मतिहीन मनुष्य के सम्मुख अच्छे बुरे सभी प्रकार के मनुष्य समान देख पड़ते हैं।

६०—जो सर्वदा पूँछता, सुनता तथा रातदिन धारण करता है, उसकी बुद्धि वैसी ही बढ़ती है जैसे सूर्य के किरणों से कमलिनी।

६१—सत्य का स्रोत भूलों के बीच में से होकर बहता है।

६२—जो मूर्ख है उसको अपना मुँह बन्द करना नहीं आता।

६३—मूर्ख दूसरों के दोष पकड़ सकते हैं परन्तु वे स्वयं उनसे अच्छा कार्य नहीं कर सकते।

६४—असत्य सहज में मिल जाता है, सत्य का खोजना कठिन है। क्योंकि असत्य हलका होता है और ऊपर तैरता है। सत्य भारी होने से गहराई में रहता है। इसी से संसार में सत्य सबको प्राप्त नहीं होता।

६५—जो मनुष्य सत्य के लिए धैर्य रखता है वही आगे बढ़ता है।

६६—सत्य के आधार पर स्थित रहने से बढ़कर दूसरा कोई आनन्द नहीं है।

६७—सत्य किरणों की किरण, सूर्यों का सूर्य, चन्द्रमाओं का चन्द्र, तथा नक्षत्रों का नक्षत्र है, सत्य सबका सारभूत तत्त्व है।

६८—जिस प्रकार सूर्य की किरण किसी पदार्थ से अपवित्र नहीं की जा सकती उसी प्रकार से सत्य को भी अपवित्र करना असम्भव है।

६९—सत्य वस्तुतः अन्त तक सत्य ही बना रहता है।

७०—सच बोलना सुन्दर लिखने के समान है जो अभ्यास से ही प्राप्त होता है।

७१—जिसके हृदय में सत्य है वह दूसरों के वञ्चना के वाक्यों से निर्भय रहता है।

७२—झूठ बोलना नीच प्रकृति वालों की कला है, इसी से इनकी बेइमानी का पता चलता है।

७३—सत्य से विपरीत बोलना न केवल बोलने वाले को अहित करता है, परन्तु मनुष्य समाज के स्वास्थ्य पर कुठार गिराता है।

७४—झूठ बोलने वाले का हृदय सर्वदा दुष्ट और पापी होता है।

७५—सच्चरित्रता मनुष्य जीवन का गौरव तथा अलंकार है।

७६—संसार में सत्य के सिवाय संग्रह करने योग्य दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

७७—सत्यवादी मनुष्य यद्यपि आर्थिक दृष्टि से दरिद्र है किन्तु वह मनुष्यों का वास्तविक राजा है।

७८—सज्जनता मनुष्य को वास्तविक रूप से प्रसन्न करती है।

७९—इस संसार में ऐसे अद्भुत आचरण वाले सज्जन लोग किसके पूजनीय नहीं होते जो नम्रता से ऊँचे होते हैं, जो दूसरों के गुण कथन से अपने को प्रसिद्ध करते हैं, जो विस्तारपूर्वक दूसरों का कार्य करके अपना कार्य सम्पादन करते हैं, जो अपनी क्षमा ही से उन दुष्टों की निन्दा को दूषित करते हैं। जिनके मुख कठोर वचनों से परिपूर्ण हैं।

८०—उत्तम जन के संसर्ग से ही अवगुण, गुण हो जाता है, खारा पानी भी मेघों में जाकर मधुर हो जाता है।

८१—सज्जन मनुष्यों का चित्त क्रुद्ध होने पर भी नहीं बिगड़ता, जैसे समुद्र का जल फूस की लुकारी से गरम नहीं किया जा सकता।

८२—भला काम करने का स्वभाव एक ऐसा साधन है, जिसको शत्रु छीन नहीं सकता और चोर चुरा भी नहीं सकता।

८३—दुर्जन लोग लज्जावान् को जड़, पवित्र को पाखण्डी, व्रतधारी को दम्भी, शूर को निर्दयी, मुनि को मूर्ख, प्रियवादी को दीन, तेजस्वी को घमण्डी, वक्ता को बकवादी और स्थिर चित्त वाले को आलसी कहते हैं, गुणियों में कौन सा ऐसा गुण है जिसमें दुष्ट लोग कलङ्क नहीं लगाते।

८४—संसार ही महापुरुष को ढूँढ़ता है, न कि महापुरुष संसार को।

८५—प्रसन्न-चित्त तथा हर्ष-युक्त स्वभाव सर्वश्रेष्ठ शक्ति-वर्धक औषधि है।

८६—मान को त्याग कर मनुष्य प्रिय होता है; क्रोध त्याग कर मनुष्य पवित्र होता है तथा लोभ छोड़कर मनुष्य सुखी होता है।

८७—कष्ट तथा आपत्तियां मनुष्य के अध्यापक हैं।

८८—ईश्वर का सबसे बड़ा पूजन उद्योग करना है।

८९—दुर्बल चित्त-वालों का आलस्य ही शरण है।

९०—आलसी मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को नहीं जानते।

९१—क्या आप जीवन को प्यार करते हैं? यदि करते हैं तो समय का अपव्यय क्यों करते हो? क्या आपको नहीं मालूम कि उसी के द्वारा आपके जीवन का गठन हुआ करता है।

९२—विद्या के समान नेत्र नहीं है, सत्य के समान कोई तप नहीं है, और त्याग के समान कोई सुख नहीं है।

९३—काम, क्रोध, लोभ, स्वाद, शृंगार, कौतुक, अतिनिद्रा तथा अतिथि-सेवा ये आठ कर्म विद्यार्थियों के लिए वर्जित हैं।

९४—सुन्दरता का प्रधान अंश वही है जिसको चित्रकार चित्र में नहीं दरसा सकता।

९५--कोयल का रूप उसका स्वर है, स्त्रियों का रूप पतिव्रता होना है, पुरुष का रूप विद्या है तथा तपस्वियों का रूप क्षमा है।

९६--जिसके पास धैर्य रुपी धन है उसके पास समस्त संसार का कोष है।

९७--शत्रुओं को क्षमा करना बदला लेने का सबसे अच्छा साधन है।

९८--नम्र पुरुष का कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता, देखो रुई का ढेर तलवार से भी नहीं काटा जा सकता।

९९--धूर्तता और चालाकी से विवेक पृथक् रहता है।

१००--संसार में चार प्रकार के मनुष्य होते हैं :--

(क) एक तो मक्खीचूस जो न तो आप खाते हैं और न दूसरों को कुछ देते हैं।

(ख) दूसरे कञ्जूस जो स्वयं तो खाते हैं परन्तु दूसरों को कुछ नहीं देते।



(ग) तीसरे उदार जो आप भी खाते हैं और दूसरों को भी खिलाते हैं।

(घ) चौथे दाता जो आप न खाकर दूसरों को खिलाते हैं।

१०१—मन तीन प्रकार होता है :—

(क) एक तो पर्वत के समान अचल होता है जिसको कोई डिगा नहीं सकता।

(ख) दूसरा वृक्ष के समान होता है जो वायु के वेग से झकोरा खाया करता।

(ग) तीसरा तिनका के समान होता है जिसको वायु जहाँ चाहे वहाँ फेंक सकती है।

१०२—महान् पुरुषों के पाँच लक्षण हैं :—

(क) दूसरे की निन्दा को झूठ समझना तथा उसकी कहीं भी चर्चा न करना।

(ख) अपनी प्रशन्सा सुनकर अप्रसन्न होना, तथा दूसरों की प्रशन्सा सुनकर प्रसन्न होना।

(ग) दूसरों को सुख देना तथा अपने सुख से बढ़ कर जानना।

(घ) छोटों से दया तथा कोमलता तथा बड़ों से आदर पूर्वक व्यवहार करना।

(ङ) खेल में भी किसी से छल न करना।

१०३—नम्रता के तीन लक्षण हैं :—

(क) कटु वचन का प्रिय उत्तर देना।

(ख) क्रोध भड़कने पर चुप रह जाना।

(ग) दण्डभागी को दण्ड देते समय चित्त को कोमल रखना, उद्विग्न न करना।

१०४—वैराग्य तीन प्रकार का होता है :—

(क) अपवित्र वस्तुओं का त्याग करना।

(ख) कर्तव्य में बाधक वस्तुओं का त्याग करना।

(ग) ईश्वर से दूर हटाने वाले बिषयों का त्याग करना।



१०५—मन पांच प्रकार का होता है :—

(क) एक तो मुर्दा मन जैसा नास्तिकों का होता है।

(ख) दूसरा पापियों के समान रोगी मन।

(ग) तीसरी पेट-भरों का सा अचेत मन।

(घ) चौथा सूद-खाने वाले के समान उलटा मन।

(ङ) पाँचवा स्वस्थ मन जैसे सन्तों का होता है।

१०६—आन्तरिक रोग की पाँच औषधियाँ :—

(क) सत्संग, (ख) धर्म-शास्त्र का अध्ययन, (ग) अल्पाहार (घ) प्रातः तथा संध्या समय ईश्वर की आराधना, (ङ) एकाग्र चित्त होने का प्रयत्न।

१०७—सरल-कठिन :—

(क) मारना सरल है-परन्तु मार खाना कठिन है।

(ख) अपमान करना सरल है-परन्तु अपमान सहना कठिन है।

(ग) क्रोधादि लाना सरल है–परन्तु क्रोध सह लेना कठिन है।

(घ) स्तुति सुनना सरल है–परन्तु निन्दा सुनना कठिन है।

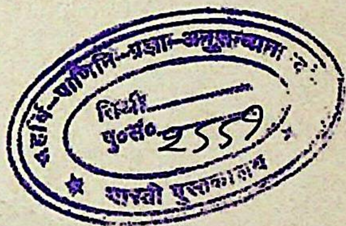
(ङ) खण्डन करना सरल है–परन्तु रचना कठिन है।

(च) हिंसक बनना सरल है–अहिन्सा करना कठिन है।

१०८—सत्य मेरी माता, ज्ञान मेरा पिता, दया मेरा मित्र, शान्ति मेरी स्त्री और क्षमा मेरा पुत्र ये ५ मेरे बन्धु हैं।

१०९—जो तुम्हारे साथ बुराई करे उसको बालू पर लिखो, जो भलाई करे उसे पत्थर पर लिखो। इतिशम्।




तिथि
पु०सं० 2559